Chap-5

पंचम अध्याय

हिन्दी एवं गुजराती प्रणयगीत काव्य का कला सौष्ठव

पंचम् अध्याय

भ्रमरगीत काव्य का कला-सौष्ठव

तीसरे अध्याय में भ्रमरगीत काव्य के भाव-पक्ष पर हमने विचार किया है। अब यहां भ्रमरगीत काव्य के कला-पक्ष का विवेचन कर लेना भी आवश्यक है। काव्य-कौशल में भाषा, छंद, अलंकार और शैली का निश्चय ही महत्व है। अतः भ्रमरगीत काव्य को दृष्टि समक्ष रखते हुए अभिव्यक्ति के इन प्रमुख उपादानों पर विचार करना समीचीन होगा।

भाषा :

भावाभिव्यक्ति का आवश्यक अंग भाषा है। 'जिहि अरथ आखर बल साँचा' अर्थात् किसी कवि का भाषा पर अधिकार होना उसकी बड़ी शक्ति है। भ्रमरगीत काव्य विरह-भावनाओं से ओतप्रोत काव्य है जिसमें उद्धव-गोपी-संवाद प्रसंग वक्रता एवं विदग्धता को लेकर अत्यधिक प्रसिद्ध रहा है। भ्रमरगीतकार कवियों ने इस प्रसंग को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए भाव और भाषा दोनों पर समुचित ध्यान दिया है। मार्मिक भावों की अभिव्यक्ति बिना समृद्ध भाषा के नहीं हो सकती। भाषा केवल भावों को ही वहन नहीं करती वरन् भावों की चारुता में अभिवृद्धि भी कर देती है। यदि कवि सुन्दर से सुन्दरतम भावों को सफलतापूर्वक व्यक्त नहीं कर पाता तो उसकी भाव-सम्पत्ति किस काम की ? बिना सशक्त भाषा के हम अपने आशय को अभिव्यक्त नहीं कर सकते। अतएव भाषा अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। हिन्दी के अधिकांश भ्रमरगीतकार कवियों ने ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। प्रश्न हो सकता है कि भ्रमरगीतकार कवि ब्रजभाषा को तन्मयता के साथ क्यों अपनाते रहे ? शब्द-माधुर्य भाषा का एक विशेष गुण है। जिस भाषा में मधुर शब्दों की जितनी प्रचुरता होगी, वह उतनी ही उत्कृष्ट समझी

जायगी । अच्छे भाव किसी भाषा में अच्छे ही लगेंगे, पर यदि वे मधुर भाषा में हों, तो और भी हृदयग्राही हो जायेंगे । ब्रजभाषा ऐसी ही श्रुति -माधुर्य-पूर्ण भाषा है ।"[१]

भ्रमरगीत काव्य को शब्द-शिल्पी सूर ने सजाया संवारा और नंददास जी ने इसकी धार को तीव्र किया, पानी चढ़ाया । आधुनिक युग में कविवर रत्नाकर जी ने इसमें मार्मिकता और तेजस्विता भरने का प्रयत्न किया और सत्यनारायण 'कविरत्न' ने अपनी वाणी की मिठास से युक्त किया जबकि हरिऔध जी ने संस्कृत पदावली युक्त खड़ी बोली का उसे जामा पहनाया । इस प्रकार हम देखते हैं कि भ्रमरगीत काव्य की भाषा वैविध्यपूर्ण है । इसे अनेक समृद्ध हाथों का अवलंब मिला है । इसमें कच्चापन नहीं रह गया । संवादों की भाषा में यदि कचाई रह जाय तो उसका प्रभाव अल्प एवं क्षीण हो जाता है । अब हम यहाँ हिन्दी भ्रमरगीतकारों में से कुछ प्रमुख कवियों की भाषा पर संक्षेप में विचार करेंगे ।

सूरदास :

अष्टछाप के कवियों में महान् भक्त कवि सूरदास जी का स्थान शीर्षस्थानीय है । वे विपुल शब्द संपत्ति के स्वामी थे । भाव और भाषा का मणि-कांचन योग उनके भ्रमरगीत सम्बन्धी पदों में मिलता है । उनके द्वारा प्रयुक्त ब्रजभाषा में संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों का प्रयोग स्वाभाविकता के साथ मिलता है । 'मधुप', 'नृपति', 'लता' 'प्रीति' आदि तत्सम शब्दों का प्रयोग द्रष्टव्य है । तद्भव शब्दावली प्रचुर उनकी भाषा में अवधी, गुजराती, पंजाबी एवं फारसी के शब्द भी यत्र-तत्र मिलते हैं । उनके काव्य में 'प्रीति करि काहू सुख न लह्यौ', 'प्रीति नई नित मीठी', 'मिले मन जाहि-जाहि सों ताकौं कहा करै काजी' आदि लोकोक्तियों का प्रयोग भी मिलता है । भ्रमरगीत काव्य उपालंभ

१- हिन्दी का समस्या पूर्ति-काव्य : डा० दयाशंकर शुक्ल
प्रकाशक : गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, पृष्ठ २५६

एवं व्यंग्य प्रधान है। इस कुशल कवि ने भावाभिव्यंजक शब्दावली का प्रयोग कलात्मक ढंग से किया है -

"श्याम विनोदी रे मधुबनियां,
अब हरि गोकुल काहे को आवहिं चाहत नव यौवनियां।

वे दिन माधव भूलि बिसरि गये, गोद खिलाये कनियां,
गुहि-गुहि देते नन्द यशोदा तनक कांच के मनियां।
दिना चार तैं पहिरन सीखे पट पीताम्बर तनियां;
सूरदास प्रभु तजी कामरी अब हरि भये चिकनियां।"

सूर की भाषा के सम्बन्ध में समीक्षा करते हुए लाला भगवानदीन ने कहा है ---" कहीं कहीं व्याकरण की अशुद्धियां भी मिलती हैं और वे खटकने वाली हैं।"[१] कवि निरंकुश हुआ करता है अत: आवश्यकतानुसार शब्दों को तोड़ना मरोड़ना स्वाभाविक है।

नन्ददास :

नन्ददास जी मधुर एवं कोमलावृत्ति - प्रधान भाषा के लिए प्रसिद्ध हैं। सूरदास एवं परमानन्ददास के समान उनकी भाषा भी ब्रज की बोलचाल की भाषा है। जन-साधारण की भाषा होने पर भी उनकी भाषा माधुर्य एवं सरसता जैसे साहित्यिक गुणों से युक्त है। सूरदास के पश्चात् उनका द्वितीय स्थान माना जाना यथार्थ है। उनमें भावानुरूप वर्णसंयोजन की अद्भुत शक्ति के दर्शन होते हैं। इस शब्द शिल्पी के सम्बन्ध में कही गई उक्ति " और कवि गढ़िया नन्ददास जड़िया" निश्चय ही सार्थक है। 'भंवरगीत' में उनका यह जड़िया रूप दृष्टिगोचर हुए बिना नहीं रहता। भंवरगीत में 'ब्रह्म', 'नासिका', 'प्रेम', 'कर्म' 'अग्नि', 'आत्मा',

---

१- सूर पंचरत्न : लाला भगवानदीन -पृष्ठ ६७

`त्रिभंग`, `सलिल`, `गुल्म`, `लता` आदि संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है। ब्रजभाषा की प्रवृत्ति के अनुरूप `उपदेसे`, `संदेस`, `परकमा`, `जोति`, `प्रकास` आदि तद्भव शब्दों की प्रचुरता भी स्वाभाविक रूप से मिलती है। उनकी "भाषा में नियम-नियंत्रितता का पूरा निर्वाह है, कहीं भी वह व्याकरण तथा काव्य-शास्त्र के नियमों से पृथक नहीं जाती। उसकी स्वाभाविकता और उसके चलतेपन की सुन्दरता के लिए कवि ने यथावश्यकता लोकोक्तियों और प्रयोगों (मुहावरों) का बहुत ही स्वाभाविक और सच्चा प्रयोग किया है, साथ ही उसमें भाव- व्यंजकता भी बड़ी अनोखी और चोखी रक्खी है।"[१] इस प्रकार हम देखते हैं कि नन्ददास जी का भाषा पर पूर्ण अधिकार रहा है।

हरिऔध :

हरिऔध जी ब्रजभाषा के साथ-साथ खड़ी बोली में काव्य रचने के लिए सदैव स्मरण किये जायेंगे। खड़ी बोली में ब्रजभाषा जैसा माधुर्य हो, वैसी ही भाव संप्रेषणता हो और उसकी शक्ति में किसी प्रकार की न्यूनता न आने पावे इसके लिए उन्होंने पूरी सजगता बरती। `प्रिय प्रवास` संस्कृत वृत्तों में रचा गया उनका महान काव्य है जिसकी भाषा समास बहुला संस्कृत पदावली युक्त खड़ी बोली है। हरिऔध जी के `प्रिय प्रवास` में भी `भ्रमरगीत` प्रसंग है जिसमें करुणा-मिश्रित वियोग शृंगार भरा हुआ है। हरिऔध जी ने अन्य काव्यों में प्रसादगुण युक्त सहज - सरल भाषा का प्रयोग किया है, किन्तु `प्रिय-प्रवास` में उन्होंने जान-बूझकर क्लिष्ट समासयुक्त भाषा संस्कृत की प्रकृति के अनुसार रख दिया है। ऐसा करने में उनका प्रयोजन विषय की गुरुता एवं भावों की गंभीरता ही रहा है। भ्रमरगीत प्रसंग के उनके छन्दों में संस्कृत तत्सम कहीं - कहीं अप्रयुक्त शब्दों की

१- रासपंचाध्यायी : भ्रमरगीत : टीकाकार डा० रामशंकर शुक्ल `रसाल`
पृष्ठ -२६
प्रकाशक : भारती निकेतन, इलाहाबाद।

भरमार है। अनेक स्थलों पर खड़ी बोली के इस काव्य में ब्रजभाषा की क्रियाएं भी आ गई हैं। 'लसै' और 'बिलसै' जैसी क्रियाएं तो प्राय: मिलती हैं। ऐसी क्रियाओं के प्रयोग के सम्बन्ध में उनका अपना दृष्टिकोण भी रहा है। जिसे उन्होंने प्रिय-प्रवास की भूमिका में स्पष्ट कर दिया है। 'मेरा विचार है कि इन क्रियाओं के व्यवहार से खड़ी बोली का पद्य भाण्डार सुसंपन्न और ललित होने के स्थान पर जातिग्रस्त और असुन्दर न होगा।'[१] हरिऔध जी के प्रिय-प्रवास में यहां हमारा संकेत भ्रमरगीत प्रसंग से है। ~~प्रसंग~~ में 'तत्सम शब्दावली के साथ-साथ तद्भव शब्द भी प्राय: मिल जाते हैं। जैसे - गरब, मरम आदि। भाषा के प्रयोग की दृष्टि से 'प्रिय प्रवास' में कठिन एवं सरल दोनों प्रकार के की भाषा के कुछ उद्धरण द्रष्टव्य हैं -

"शोभा-अद्भुतशालिनी-ब्रजधरा प्यारी धरा गोपिका।
माता प्रीतिमयी स्नेह-प्रतिमा वात्सल्य धाता पिता।।
प्यारे गोप कुमार प्रेम-मणि के पाथोधि से गोपसे।
भूले हैं न, सदैव याद उनकी देती व्यथा है महा।।

प्रस्तुत छंद की प्रथम तीन पंक्तियों में केवल एक ही विभक्ति चिन्ह 'के' का प्रयोग हुआ है। 'से' उपमा वाचक शब्द है और 'ये' सर्वनाम का संकेत करता है। विस्तृत समास-युक्तता पाई जाती है किन्तु इसके अंतिम चरण में सहज सरल हिन्दी की प्रकृति दीख पड़ती है जिसमें न समासयुक्तता है न क्लिष्टता। अब एक सरल भाषा का उदाहरण देखिए -

"भूला जाता वह सजन है चित्त में जो बसा हो।
देखी जाके सुकृति जिसकी लोचनों में रमी हो।।
ऐसे भूले कुंवर जिसमें चित्त ही जा बसा है।
प्यारी शोभा निरख जिसकी आप आखें रमी हैं।।

१- प्रियप्रवास : भूमिका पृ० ३६

इस प्रकार हम देखते हैं कि हरिऔध जी को एक साथ एक ही प्रसंग में क्लिष्ट एवं सरल, समासयुक्त एवं समासरहित, शुद्ध तत्सम एवं तद्भव शब्द युक्त भाषा के प्रयोग करने की कुशलता प्राप्त थी - ।

मैथिलीशरण गुप्त :

भारतीय संस्कृति के आख्याता राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की लेखनी के स्पर्श से प्रसंगित प्रसंग 'द्वापर' में आकर निखर उठा है । 'द्वापर' आत्मकथानात्मक शैली में लिखा गया है । सभी पात्र अपनी अनुभूति का वर्णन स्वमुख से करते हैं । प्रसंगित काव्य-परंपरा में शैली की दृष्टि से यह नूतन प्रयोग है । "गुप्त जी की भाषा शुद्ध प्रवाहयुक्त तथा परिमार्जित खड़ी बोली है,। जिसमें तत्सम् तद्भव एवं ढ्ढ०ढ्ढ० देशज शब्दों का प्रयोग आवश्यकतानुसार किया गया है । इनके काव्य की सबसे बड़ी विशेषता उसकी लोकप्रियता है । वह सबके पढ़ने योग्य है । श्लीलता का उसमें सर्वत्र निर्वाह हुआ है और गुप्त जी ने हिन्दू सभ्यता और संस्कृति को उसके उज्ज्वलतम रूप में सामने रखा है ।"[१] गुप्त जी की भाषा में प्राप्त बोधगम्यता एवं भावप्रवाह इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है -

'अब शिशु नहीं सयाना है वह,
नर तू जानें यह क्या ?
आया है वह तेरी माखन,
मिसरी ही खाने क्या ?
खेल खिलौने के दिन उसके,
बीत गये वे मैया ।"

+ + +

१- हिन्दी साहित्य एक परिचय : डा० त्रिभुवनसिंह पृ० २०८
प्रकाशक : हिन्दी प्रचारक संस्थान, पिशाचमोचन, वाराणसी ।

"ज्ञानयोग से हमें हमारा,
यही वियोग भला है।
जिसमें आकृति, प्रकृति, रूप, गुण,
नाट्य कवित्व कला है।"

+ + +

"एक मूर्ति आवै मैं राधा,
आवै मैं हरि बूरे।"

(द्वापर)

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' :

ब्रजभाषा के शुद्ध रूप के दर्शन कविवर रत्नाकर जी के 'उद्धव-शतक' में होते हैं। उनकी भाषा ब्रजभाषा का परिष्कृत रूप है जिसमें प्रसादात्मकता, व्यंजना-बल एवं लालित्य जैसी विशेषताएं सहज परिलक्षित होती हैं। भाषा सौष्ठव के लिए उन्होंने सूर और नन्ददास से अधिक बिहारी का विशेष अनुकरण किया है। खड़ी बोली के इस युग में वे ब्रजभाषा के आचार्य थे। उनकी रचनाओं में सजीवता, साकारता और शालीनता की त्रिवेणी परिलक्षित होती है। अनुभूति, अभिव्यक्ति एवं कल्पना का सुन्दर समन्वय मिलता है। उनके शब्द-चयन में शैथिल्य के दर्शन नहीं होते। उनकी भाषा में प्रवाहमयता एवं गतिशीलता है। इस सम्बन्ध में एक उद्धरण द्रष्टव्य है -

"भेजे मनभावन के ऊधव के आवन की,
सुधि ब्रज गांवनि मैं पावन जबै लगीं।
कहै रत्नाकर गुवालिनी की झौरि झौरि,
दौरि दौरि नन्द पौरि आवन तबै लगीं।।
उझकि उझकि पद कंजन के पंजनि पै,
पेखि पेखि छाती छाती कोल्ह छबै लगी।
हमकौं लिख्यौ है कहा, हमकौं लिख्यौ है कहा,
हमकौं लिख्यौ है कहा कहन सबै लगी।

रत्नाकर जी अपनी भावानुकूल भाषा के प्रयोग को लेकर 'उद्धव -शतक' को प्रसादिकता एवं माधुर्यपूर्ण बनाने में सफल रहे हैं। उन्होंने आवश्यकतानुसार अनेक प्रचलित मुहावरों का प्रयोग किया है। 'कांटे की तरह खटकना', 'दिन के फेरे होना', 'गांठ से गिरना', 'मंत्र फूकना', 'कलेजा थामना' आदि मुहावरों के सफल प्रयोग से उनकी भाषा अधिक भाव-व्यंजक बनी है। 'रत्नाकर जी' की भाषा का एक दूसरा महत्वपूर्ण गुण चित्रोपमता है - एक छंद देखिए -

प्रेम मद छाके पग परत कहां के कहां,
थाके अंग नैननि सिथिलता सुहाई है।
कहै रतनाकर यौं आवत चलात ऊधौ,
मानौं सुधियात लोकु भावना भुलाई है।
धारत धरा पै ना उदार अति आदर सौं,
सारत बकोलिनि जो आंस अधिकाई है।
एक कर राजै नवनीत यसुदा को दियौ,
एक कर बंसीबर राधिका पठाई है।

छन्द :

छंद भाषा में स्फूर्ति भरने का कार्य करते हैं। "कविता हमारे प्राणों का संगीत है। छंद हृत्कंपन, कविता का स्वभाव ही छंद में लयमान होना है।"[१] भाव जब छन्दों में आबद्ध होकर व्यक्त होते हैं तो उनमें एक विशेष गति आ जाती है। भारतीय साहित्य में वैदिक काल से ही कतिपय छन्दों का प्रचलन रहा है। उदा० सामवेद में संगीतात्मकता के साथ छंदों का विशेष वर्णन पाया जाता है।

छंद दो प्रकार के होते हैं -

१) मात्रिक और, (२) वार्णिक। मात्रिक छंद में मात्राओं के ह्रस्व अथवा दीर्घ प्रयोग के आधार पर संगठन होता है। वार्णिक छंद में वर्णों की गणना के आधार पर निर्णय किया जाता है। हिन्दी स्वभाव से ही मात्रिक -छंद प्रधान भाषा है। भक्तिकालीन गेय पद मात्रिक छन्दों के सर्वोत्तम रूप हैं। हिन्दी के

१- 'पल्लव की भूमिका' : सुमित्रानन्दन पंत।

भ्रमरगीत काव्य में उपर्युक्त दोनों प्रकार के छन्द पाए जाते हैं। हम भ्रमरगीत काव्य में प्रयुक्त कतिपय प्रमुख छन्दों का विवेचन करते हैं। सूरदास जी ने अपने प्रथम भ्रमरगीत को चौपाई छन्द में वर्णित किया है अतएव सर्वप्रथम चौपाई छन्द देखेंगे -

चौपाई :

यह मात्रिक छन्द है जिसके प्रत्येक पद में १६ मात्राएं होती हैं। इसके अंत में जगण या तगण आने से छंद की सुन्दरता नष्ट हो जाती है :-

"हौं तुमपै ब्रजनाथ पठायौ, आतम ज्ञान सिखावन आयौ।
आपुहि पुरुष आपुहि नारी, आपुहि वानप्रस्थ व्रतधारी ।।
आपुहि पिता आपुहि माता, आपुहि भगिनी आपुहि भ्राता।
आपुहि पंडित आपुहि ज्ञानी, आपुहि राजा आपुहि रानी ।।

दोहा :-

दोहा भी मात्रिक छंद है जिसके विषम चरणों में १३ मात्राएं और सम चरणों में ११ मात्राएं होती हैं। विषम चरणों के आदि में जगण वर्जित है। सम चरणों के अंत में गुरु-लघु होना चाहिए।

सबै सखी एकत भई, निरखत स्याम सरीर।
आये चित के चोरना, कहां गये बलवीर ।।
ज्यों नलिनी पूरण समैं, बाढ़ी उदधि तरंग।
निरखति चन्द चकोर ज्यों, बिसरी गई सब अंग ।।

कवित्त :

कवित्त के लिए छंदशास्त्र में निश्चित नियम नहीं है। यह वर्णिक वृत्त है -८, ८,८ और ७ के क्रम से १६ और १५ पर यति होती है। कुल वर्ण ३१ होते हैं।

भ्रमरगीतकारों में रत्नाकर, रसाल आदि ने कवित्त-शैली का प्रयोग किया है -

चाव से चले हौ जोग चरचा चलाइबै कौं,
चपल चितौनि तैं चुचात चित चाह है ।
कहै 'रत्नाकर' पै पारसा बसै है ऊधू,
हेरत हिरैहै भर्‌यो जौ उर उछाह है ।।

उधौ जू कहौ तौ कैसो जोग कै कुजोग भयौ,
रोग भयौ, कैसे भये ऐसे आप जातैं हैं ,
अलख लखात ना लखात लख क्यौं हूं तुम्हैं,
हौ तौ गुनवारे तऊ बेगुन की बातैं हैं ।।

द्रुत बिलम्बित :

इसमें बारह अक्षर होते हैं । प्रत्येक चरण में नन न य भ र होता है, जिसे सुन्दरी भी कहते हैं ।

जगत जीवन प्राण स्वरूप का,
निज पिता जननी गुरु आदि का ।।
स्व-प्रिय का प्रिय साधन भक्ति है,
वह अकाम महा-कामाय है ।।

मन्दाक्रान्ता :

इसमें सत्रह अक्षर होते हैं । प्रत्येक चरण में (म भ न त ल ग ग) होता है । चार, छः और सात अक्षरों पर यति का प्रयोग होना चाहिए ।

विश्वात्मा जो परम प्रभु है रूप तो हैं उसी के ।
सारे प्राणी सरि गिरि लता बल्लियां वृक्ष नाना ।।
रक्षा पूजा उचित उनका यत्न सम्मान सेवा ।
भावो-पेता परम प्रभु की भक्ति [illegible] सर्वोत्तमा है ।।

बसंततिलका :

इसमें चौदह अक्षर होते हैं। प्रत्येक चरण में (त ज भ ज ज ग ग) होता है। निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

जो प्राणि पुंज निज कर्म निपीड़ितों से,
नीचे समाज वपु के पग सा पड़ा है।
देना उसे शरण मान प्रलय द्वारा,
है भक्ति लोकपति की पद सेवनाख्या।

कविवर नन्ददास जी ने भ्रमरगीत की रचना में मिश्रित छन्द विधान किया है। उन्होंने प्राय? रोला तथा दोहा छंद को मिलाकर नये छन्द की रचना कर दी है जिसके अंत में एक 'टेक' रख दी है। उनकी इसे छंद शैली का अनुसरण आगे चलकर सत्यनारायण कविरत्न ने अपने 'भ्रमरदूत' काव्य के प्रणयन में किया है। नन्ददास रचित 'भ्रमरगीत' के छन्दों के विषय में डा० 'रसाल' की ये पंक्तियां द्रष्टव्य हैं -

"नन्ददास ने इसके लिखने में छन्द-मिश्रण से कार्य किया है। प्रारंभ में 'तिलोकी' छन्द रखा है, जो एक मिश्रित छन्द है और चान्द्रायण और प्लवंगम से बनता है। चांद्रायण में ११ और १० मात्राएं होती हैं और आदि में गुरु और अन्त में र गण अर्थात् गुरु-लघु गुरु तथा य गण अर्थात् लघु-गुरु-गुरु वर्ण रहता है। तिलोकी छन्द में भी ११ पर यति देकर १० मात्राएं होती हैं तथा आदि और अन्त में गुरु वर्ण रहता है, प्लवंगम में ८ और १३ मात्राओं पर यति तथा आदि का वर्ण गुरु और अन्त में ज गण अर्थात् लघु-गुरु-लघु और अंतिम वर्ण गुरु रहता है। इस प्रकार तिलोकी छंद मात्राओं और यति के विचार से तो चांद्रायण का और गणों के विचार से प्लवंगम का अनुसरण करता है। इसके पश्चात् दोहा छंद रखकर अंत में १० मात्राओं की टेक भी जोड़ दी है"[1] द्वितीय छंद में रोले और दोहे के संयोग

१- दे. श्रीनन्ददास कृत - 'रासपंचाध्यायी, भ्रमरगीत' पृ० २०३, २०४
टीकाकार- डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल'

के पश्चात् टेक रक्खी गई। रोला छन्द में १३ और ११ मात्राओं पर यति रहती है। दोहे में भी १३ और ११ की मात्राओं पर यति रहती है। दोनों छंद मात्राओं की संख्या में तो समान हैं, किन्तु रूप या गति में पृथक् हैं।

रोला छंद प्राय: वर्णनात्मक प्रबंध-काव्य के लिये अच्छा होता है। यहां संवाद चल रहा है, अतएव इसके साथ दोहा दिया गया है, दोहे में मुख्य बात, जिसे ~~मार्मि~~ अंत में रखना है, रखकर उसे बल या सहायता देने के लिये एक टेक लगा दी गई है। यहां छंद-मिश्रण तिल-तंदुल-न्याय के रूप में किया गया है और इस मिश्रित छंद को कुछ संगीतात्मक रूप देने तथा सम्बोधन अथवा भाव-पोषण के लिये एक टेक लगाई गई है। चार पंक्तियों में दो छंद मिलाये गये हैं।[१] उदाहरणार्थ देखिये -

ऊधव कौ उपदेश सुनौ ब्रजनागरी,
रूप-सील लावन्य सबै गुनागरी।

दो० प्रेम-पुंज रसकेलिनी, रजनागति सुख-पुंज,
सुन्दरस्याम बिलासिनी, नव वृन्दावन-कुंज।
सु०
सुनौ ब्रज-नागरी। १

कहन स्याम सन्देस, एक मैं तुमपै आयौ,
कहन सपै, संकेत कहूं अवसर नहि पायौ।

दो० सोचत ही मन में रह्यौ कब पाऊं इक ठाऊं,
कहि संदेश नंद-लाल कौ, बहुरि मधुपुरी जाऊं।
सुनौ ब्रजनागरी। २

सवैया :

भ्रमरगीत काव्य में सवैया छंद के विभिन्न भेद प्राप्त होते हैं। भिखारीदास

१ - रास पंचाध्यायी - भ्रमरगीत - नवदल पृ २०४ डॉ. 'रसाल'

तथा भारतेन्दु ने इस छन्द का प्राय: प्रयोग किया है। मकरंद छंदा जिसका लक्षण है म गण ७ अंत में गुरु-गुरु का एक छन्द देखिए :-

"ऊधौ जू सूधौ गयौ वह मारग ज्ञान की तेरे जहां
गुदरी है।
कोऊ नहीं सिख मानिहै ह्यां इन स्याम की प्रीति
प्रतीति भरी है।
ये ब्रजबाल सबै इक सी हरिचंद जू मंडली ही
बिगरी है।
एक जो होय तो ज्ञान सिखाइये कूप में भांग परी है।"

(भारतेन्दु)

उपर्युक्त विवेचन में भ्रमरगीत काव्य में प्राप्त कुछ छन्दों का यहां उल्लेख किया है। भ्रमरगीत सम्बन्धी अन्य ग्रन्थों में छन्द का विस्तृत विवरण दिया जा चुका है।अत: यहां अनावश्यक पिष्टपेषण से बचा गया है। अगले पृष्ठों पर हम भ्रमरगीतों में प्राप्त कुछ अलंकारों का भी विश्लेषण करेंगे।

अलंकार :

भ्रमरगीत काव्य भावना प्रधान काव्य है। इसमें भावोर्मियों की प्रबलता के कारण कला के प्रति सजगता नहीं बरती गई है। भक्त कवि को कला के प्रति कोई अनिवार्य आकर्षण था भी नहीं। इसलिये भ्रमरगीत काव्य में सायास अलंकारिता नहीं आने पाई है। अलंकार की शोभा अनायास ही भ्रमरगीत रूप में लिखे काव्य में आ गई है -" काव्य शोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते "[1] सम्भवत: दण्डी ने इसी अनायास अलंकारिकता को दृष्टि में रखकर प्रस्तुत लक्षण का निरूपण किया होगा। अलंकारों की महिमा का गान करना यहां हमारा अभिप्रेत नहीं है। हमें

१- काव्यादर्श (२-१) आचार्य दण्डी।

तो भ्रमरगीत काव्य में अलंकार किस रूप में कहां आए हैं उनका संक्षेप में निर्देश कर देना ही समीचीन प्रतीत हो रहा है।

भ्रमरगीत काव्य में साम्य मूलक तथा वैषम्य मूलक दोनों प्रकार के अलंकारों का सुष्ठु प्रयोग हुआ है। यहां कुछ प्रमुख कवियों की रचनाओं में प्राप्त कुछ अलंकार दिए जाते हैं -

अनुप्रास अलंकार :

शब्दालंकारों में अनुप्रास का विशिष्ट स्थान है। इसके तीन भेद हैं -
(१) छेकानुप्रास (२) वृत्यानुप्रास (३) लाटानुप्रास

किसी वर्ण की क्रम से आवृत्ति को छेकानुप्रास कहते हैं -" छेको व्यंजन संघस्य सकृत साम्यमनेकधा।"[१]

इसके एक उदाहरण देखिए :-

"मधुकर कौन मनाऐं मानै,
अबिनासी अति अगम अगोचर कहा प्रीति रस जानै,
सिवहु ताहि समाधि की बातैं जेहिं लोग सयाने
हम अपने ब्रज ऐसेहि बसिहैं बिरह बाय बौराने
सोवत जागत सपने पौं- सुख रहिहैं जो पति माने"[२]

-+ + +

"कुवलय-कुल में से तो अभी तू कढ़ा है।
वह विचरित प्यारे पुष्प में भी रमा है।।"[३]

१- साहित्य दर्पण (१०-३)
२- उद्धव शतक : जगन्नाथदास रत्नाकर
३- प्रिय-प्रवास : हरिऔध

यमक अलंकार :

भिन्नार्थक अथवा निरर्थक स्वर व्यंजन समुदाय की आवृत्ति को 'यमक' कहते हैं ।

"सत्यर्थे पृथगर्थाया: स्वर व्यंजनसंहते: ।
क्रमेण तेनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते ।।"[1]

निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

" ताहि बतावो जोग, जोग ऊधो जिहि भावो ।"[2]

+ + +

"दीखै आतमा कुछ प्रकास आतमा कुल हूं,
जगत में धौस सो 'रसाल' तुम्हैं राते हैं ।"[3]

श्लेषालंकार :

जहां एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं, वहां श्लेष अलंकार होता है -

"श्लेष अलंकृति अर्थ बहु एक शब्द में होत ।"
- भाषा भूषण

निम्नांकित उदाहरण देखिये -

सुनि मोहन-सन्देश मन-सुमिरन ह्वै आयौ ,
पुलकित आनन -कमल, अंग आवेश जनायौ ।
विह्वल ह्वै धरनी परी, ब्रज-बनिता मुरझाय,
दै जलछींट प्रबोधहीं, ऊद्धव बात सुनाय
सुनौ ब्रजनागरी ।६

यहां मोहन शब्द श्लिष्ट है । मोह लेनेवाला सन्देश तथा हरि का संदेश दोनों भाव मोहन शब्द में हैं ।

१- साहित्य-दर्पण (१०-८)

२- भंवरगीत : नंददास

३- उद्धव -गोपी -संवाद : डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल'

उदाहरण अलंकार :

यदि एक बात कहकर उसके स्पष्टीकरण के लिए कोई उदाहरण दिया जाय तो उदाहरण अलंकार होता है ।[1]

उदाहरण -

नास्तिक जेहैं लोग कहा जानैं हित-रूपै,
प्रगट भानु कौं गांड़ि गहै परछाहीं धूपै ।
हमरे तौ वह रूप बिन, और न कछू सुहाय ।
ज्यौं कर-तल आमलक लैं, कोटिक ब्रज दिखाय ।
सखा सुन स्याम के ।।२८।।[2]

उपमालंकार :

अर्थालंकारों का मूलाधार उपमा ही है । 'साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमादयो: ।[3] एक वस्तु के समीप दूसरी वस्तु को रखकर उसकी समानता प्रतिपादित करने को उपमा अलंकार कहते हैं । रूप वर्णन, विरह व्यंजना आदि में भावाभिव्यक्ति को तीव्र बनाने के लिए भ्रमरगीत के कवियों ने उपमालंकार का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया है । उदाहरण के लिए :-

" कलानि मांझ ज्यौं कसह तोमरी, रहत धुरे पर डारी ।
अब तौ हाथ परी जंत्री के, बांजत राग दुलारी" ।।[4]

+ + +

" जैसे कोई पतित कण पा स्वाति के०वीनीरदों का,
थोड़ी सी है परम तृषिता चातकी शान्ति पाती ।
वैसे आना श्रवण करके पुत्र का दो दिनों में,
एंजा सोती यशुमति हुई स्वल्प आश्वासितासी ।"[5]

१- अलंकार मुक्तावली - डा० देवेन्द्रनाथ शर्मा, पृ० ६४
२- भ्रमरगीत- नन्ददास, पृ० २३५ टीकाकार डा० 'रसाल'
३- साहित्य दर्पण (१०-१४)
४- सूरसागर पद ४०६२
५- 'प्रिय-प्रवास : हरिऔध सप्तम सर्ग छन्द६५

उत्प्रेक्षा अलंकार :

किसी प्रस्तुत वस्तु की अप्रस्तुत रूप में संभावना करने को उत्प्रेक्षा कहते हैं - " भवेत्संभावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना ।"[१] उदाहरण के लिए देखिये -

"सुधि-बुधि तजि माथौ पकरि, करि-करि सोच अपार ,
दृगजल निप मानहुं निकरि, बही बिरह की धार ।"[२]

+ + +

" रत्न जटित कुण्डल स्रवननि वर परति कपोलनि झाईं ।
मनु दिनकर प्रतिबिम्ब मुकुर महं ढूंढत यह छबि पाईं ।।
मुरली अधर निकट मौंहैं करि, ठाढ़ौ होन निसंग ।
मुक्त माल उर नील -सिखर तैं, धंसी ज्यौं बरनि जनु गंग ।।"[३]

रूपकालंकार :

उपमेय में उपमान के निषेधरहित आरोप को रूपक कहते हैं। उदाहरण के लिए -

"तुम्हरे बिरह, ब्रजनाथ अहो प्रिय, नयनन नदी बढ़ी ।
लीने जात निमेष कूल दोउ एते मान चढ़ी ।।"[४]

+ + +

"अन्तर गति की बिथा मानसी सो तन अधिक बिगोवै ।
परमानन्द गोबिन्द बिन अंसुअन जल उर धोवै ।।"[५]

१- साहित्य दर्पण (१०-३८) : कविराज विश्वनाथ ।

२- परमानन्ददास

३- सूरसागर पद ४१७८

४- भंवरगीत : नन्ददास पद०७४०

५- परमानन्दसागर- परमानन्ददास

सम अलंकार :

सम का अर्थ है सदृश, समान, बराबर । इसमें सदृश पदार्थों की एकत्र अवस्थिति रहती है । प्राचीन आचार्यों ने योग्य वस्तुओं के वर्णन में ही सम अलंकार माना है ।"[१]

उदाहरण के लिए देखिये -

" वै नवतनु मानिनि-गृह-बासी, ये निसि दिवस रहत जलजातन ।
ये षटपद, वै द्विपद चतुर्भुज, इनमें नाहिंन भेद कोउ भौंतन ।।"

" वै माधव, ये मधुप, सूरसुनि, इन दोउन कोऊ घटि घाट न ।।"[२]

मालोपमा अलंकार :

यदि एक उपमेय के अनेक उपमान हों तो मालोपमा होती है[३] । मालोपमा का अर्थ है माला रूप उपमा । तात्पर्य यह कि जहां एक उपमान के बदले उपमानों की माला हो - अनेक उपमान कहे जांय - वहां मालोपमा होती है ।[४] उदाहरण द्रष्टव्य है -

"अहा ! गोपियों की यह गोष्ठी,
वर्षा की ऊषा-सी ।
व्यस्त सस्म्भ्रम उठ दौड़े की,
स्खलित ललित भूषा-सी ।।
श्रमकर जो क्रम खोज रही हो,
उस भ्रम-शीला स्मृति -सी,
एक लतर्कित स्वप्न देखकर,
चकित चांकती धृति-सी ।।"[५]

१- अलंकार मुक्तावली (अ) डा० देवेन्द्रनाथ शर्मा
(ब) समं स्यादानुरूप्येण श्लाघायोग्यस्य वस्तुन: - सा० द०

२- भ्रमरगीत सार - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल -पद ३३३ पृ० १३०

३- मालोपमा यदेकस्योपमानम् बहुदृश्यते सा० द०

४- अलंकार मुक्तावली पृ० ३३

५- द्वापर : मैथिलीशरण गुप्त ।

स्मरणालंकार :

सदृश्य अथवा विसदृश्य वस्तु के प्रत्यक्ष से पूर्वानुभूत वस्तु का स्मरण, स्मरण अलंकार है।[1] उदाहरण के लिए देखिए :-

नीला -प्यारा उदक परि आ देख के एक श्यामा,
बोली वो के बिरस-बदना अन्य गोपांगना से।
कालिन्दी का पुलिन मुझको उन्मना है बनाता,
लीला-मग्ना जलद-तन की मूर्ति है याद आती ।।[2]

+ + +

वह चितवनि वह रथ की बैठनि जब अक्रूर की बांह धरी,
तेई ध्यान अंतरगति मेरे, बिसरत नाहिं एक घरी।
परमानन्द प्रभु मोहिनी मूरति मुरली मनोहर स्याम हरी ।।[3]

विरोधाभास अलंकार :

दो वस्तुओं में विरोध न रहने पर भी विरोध की प्रतीति विरोधाभास अलंकार है -" अपासत्वे विरोधस्य विरोधाभास इष्यते।

- कुवलयानन्द

उदाहरण द्रष्टव्य है :-

१- अलंकार मुक्तावली : पृ० ५४ डा० देवेन्द्रनाथ शर्मा

२- प्रिय प्रवास : चतुर्दश सर्ग-४

३- परमानन्द सागर

आंस एकेली रोकि मांस रोकि पूरन-हुलास रोकि,
मूरति निरास की सी आस भरी ज्वै रही ।
-उ०ग० २५

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी भ्रमरगीत काव्य में अलंकारों का सुष्ठु प्रयोग हुआ है । अलंकार भावव्यंजना में सहायक बन कर आये हैं । अलंकारों के प्रयोग से भाव-सौन्दर्य में अभिवृद्धि हुई है । प्राय: सभी प्रकार के अलंकार भ्रमरगीत काव्य में उपलब्ध हो जाते हैं । अब हम भ्रमरगीत काव्य की शैली की भी विवेचना कर लेना उपयुक्त समझते हैं ।

शैली :

भ्रमरगीत काव्य जैसा कि इसमें समाविष्ट 'गीत' शब्द से ही स्पष्ट हो जाता है कि यह गीतिविधा है । कालान्तर में इसके स्वरूप का विकास हुआ, अभिव्यक्ति की शैली में विविधता आई । कवियों ने दोहा, सोरठा आदि छन्दों में भी भ्रमरगीत की रचना की और उसके लिए गेयता और संगीतात्मकता जैसे गुणों का विशेष ध्यान नहीं रखा । किन्तु भ्रमरगीत की मूल चेतना के स्पर्श से स्पष्ट हो जाता है कि भ्रमरगीत मुख्यत: गीति शैली में ही कहता है । और इसका मध्यकालीन स्वरूप गीति काव्यात्मक रहा है । अतएव, यहां गीतिकाव्य की भी संक्षिप्त चर्चा कर लेना अनुपयुक्त न होगा ।

गीति काव्य :

काव्य के दो प्रमुख भेद हैं - प्रबन्ध और मुक्तक । प्रबंध काव्य में शृंखलाबद्ध कथा और पदों में पूर्वापर सम्बन्ध की अनिवार्यता होती है । मुक्तक काव्य पूर्वापर सम्बन्ध निरपेक्ष होता है । उसमें कवि किसी योजनाबद्ध विचारधारा का प्रकाशन नहीं करता । मुक्तक का ही एक रूप गीतिकाव्य है । गीतिकाव्य में भावधारा कवि के हृदय से स्वत: प्रवाहित होती है । हृदय फूट-फूट कर एक ही विषय के इर्द-गिर्द बरसता रहता है । गीत की आत्मा कवि की सहजानुभूति और उसका कलेवर गेय . . .

पदावली है। भावातिरेक ही गीतिकाव्य का जीवन है। इसमें वस्तु तत्व नगण्य होता है। भाव प्राधान्य के साथ-साथ गीतिकाव्य में गेयता भी अनिवार्य है बाबू गुलाबराय जी ने प्रगीत के लक्षण देते हुए लिखा है -"संक्षेप में प्रगीत काव्य के तत्व इस प्रकार हैं - संगीतात्मकता और उसके अनुकूल सरस प्रवाहमयी कोमल कान्त पदावली, निजी रागात्मकता (जो प्रायः आत्म निवेदन के रूप में प्रकट होती है) संक्षिप्तता और भाव की एकता, यह काव्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक अंशतः प्रेरित (स्पांटेनियस) होता है और इसी कारण अपने छोटे होते हुए भी पूर्णता का अभाव रहता है।" गीति काव्य हृदय की कोमल भावनाओं को व्यक्त करने के लिए नितान्त उपयुक्त है। श्रीमती महादेवी वर्मा के शब्दों में "साधारणतः गीतिकाव्य व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुख-दुःखात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।"[1] गीतकार अपने गीत के माध्यम से अपनी अनुभूति की तीव्रता को सहृदय तक सहज ही पहुंचा सकता है। इस प्रकार गीतिकाव्य में कवि के अन्तर्गत की अभिव्यक्ति प्रधान रहती है। वैयक्तिकता गीतिकाव्य का प्रधान स्वर होने पर भी उसका रूप एक प्रकार से सार्वभौम होता है जो पाठक में तदनुरूप अनुभूति जगाने में सक्षम होता है। प्रो० गमर ने गीतिकाव्य की परिभाषा देते हुए लिखा है -

"गीतिकाव्य परिष्कृत अवस्था को प्राप्त किए हुए समाज का काव्यरूप है। विकासशील मानव की प्रवृत्ति अन्तर्मुखी हो जाती है जहां इच्छा, आकांक्षा, भय आदि मनोभाव उत्पन्न होते रहते हैं। इन्हीं भावनाओं को अभिव्यक्त करना गीतिकाव्य का एकमात्र उद्देश्य होता है।"[2] हृदय के कोमलतम भावों की अभिव्यंजना के लिए कवियों ने प्रायः गीतशैली का ही आश्रय लिया है। हिन्दी एवं गुजराती के प्रगीत काव्य रचयिताओं ने भी इसी शैली को नितान्त उपयुक्त मानकर उसी का प्रयोग

१- श्रीमती महादेवी वर्मा का विवेचनात्मक गद्य : पृ० १४७

२- हैण्ड बुक आफ पोएट्स : एफ०बी० गुम्मर, चेप्टर-२, पृ०४०

लिया है। इष्ट का मिलन सबको प्रिय लगता है और उसका विरह उद्वेगकर प्रतीत होता है। इसी अनन्त भावभूमि की आधार शिला पर भ्रमरगीत काव्य अवलंबित है। " हिन्दी का विपुल वैष्णव भक्तिकाव्य, जिसमें कृष्ण या राम की कथाओं के विभिन्न पात्रों के माध्यम से कवियों ने अत्यंत घनिष्ट आत्म निवेदन किया है, सच्चे अर्थ में गीतिकाव्य ही है।"[१]

गीतिकाव्य के विकास का अपना एक इतिहास है। हमारा गीतिकाव्य वेदों के समान ही प्राचीन है। ऋग्वेद की प्रकृति वर्णन सम्बन्धी अनेक ऋचाएं गीतिमय हैं। सामवेद के मंत्रों का गान एक स्वयं सिद्ध सत्य है। 'गीता -सुगीता' द्वारा भगवद्गीता को भी गेय ही सिद्ध किया गया है। 'दूतकाव्य' की परंपरा में कालिदास का मेघदूत एक अति सुन्दर गीतिकाव्य है। उसमें वेदना विह्वल हृदय के अनुसिक्त भावों की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। मेघदूत के पश्चात् दूसरा प्रमुख गीतिकाव्य जयदेव का 'गीत गोविन्द' है। गीतगोविन्दकार ने प्रत्येक गीत के साथ राग और ताल की सूचना दी है। इन गीतों में भाव और भाषा का मणि-कांचन योग मिलता है। हिन्दी में गीतिकाव्य की परंपरा में अभिनव-जयदेव विद्यापति का नाम उल्लेखनीय है। इनका संस्कृत, अपभ्रंश और लोकभाषा तीनों पर पूर्ण अधिकार था। अपने अतिपय गीतों की रचना इन्होंने मैथिली बोली में की है जो हिन्दी का ही एक रूप है। उनकी गीतियों के माधुर्य को लेकर ही उन्हें 'मैथिल कोकिल' कहा जाता है। इनके गीतों का संग्रह 'पदावली' के नाम से किया गया है। इसमें भ्रमरगीत सम्बंधी पद भी मिलते हैं। इन पदों में गीतिकाव्य के तत्वों का सफलतापूर्वक निर्वाह हुआ है। विद्यापति का भाव लालित्य व्यंग्योक्तियों में दर्शनीय है।

'सूरसागर' भी जयदेव और विद्यापति के गीतिकाव्य का ही विकसित रूप है। हिन्दी में गीतिकाव्य के द्वारा कृष्ण काव्य को जन्म देनेवाले महाकवि विद्यापति ही हैं। उन्होंने अधिकांश राधाकृष्ण की प्रेम-माधुरी के गीत गाये हैं। आचार्य रामचंद्र

१- हिन्दी साहित्य कोश भाग-१ गीतिकाव्य पृष्ठ २१०

शुक्ल ने उचित ही कहा है - " यह रचना इतनी प्रगल्भ और काव्यांगपूर्ण है कि आगे होनेवाले कवियों की शृंगार और वात्सल्य की उक्तियां सूर की जूठी सी जान पड़ती हैं। अत: सूरसागर किसी चली आती हुई गीत काव्य परम्परा का चाहे वह मौखिक ही रहा हो पूर्ण विकास-सा प्रतीत होता है। सूरसागर निश्चय ही समृद्ध गीतिसागर है। परानुभूति को स्वानुभूति में बदल देना सूर जैसे महान् कवि के लिए ही सम्भव है। एक गोपी उद्धव से जो कह रही है उसको जिस तन्मयता के साथ कवि ने व्यक्त किया है यह निश्चय ही द्रष्टव्य है -

"ऊधौ हम आजु भई बड़भागी।
जिन अंखियन तुम स्याम बिलोकेम ते अखियां हम लागी।"[१]

सूर के अतिरिक्त अष्टछाप के अन्य कवि कुंभनदास, परमानन्ददास, नन्ददास आदि ने भी अपने पदों को विभिन्न रागरागनियों में बांधकर गीतिकाव्य के विकास में योगदान दिया। यही कारण है कि भक्तिकाल गीतिकाल का स्वर्ण-युग माना जाता है। भ्रमरगीत काव्य के पदों का हिन्दी गीतिकाव्य की परंपरा में अपना उल्लेखनीय स्थान है।

गुजराती के भ्रमरगीत काव्य का कलापक्ष :

हिन्दी भ्रमरगीत काव्य के कलापक्ष पर दृष्टिपात करते समय हम भाषाशैली, छन्द, अलंकारादि पर प्रकाश डाल चुके हैं। अत: यहां पिष्टपेषण से बचने के लिए संक्षेप में ही गुजराती के भ्रमरगीत काव्य के कलापक्ष पर प्रकाश डालना समीचीन समझते हैं। भ्रमरगीत काव्य अधिकांश में भावना प्रधान काव्य है। उसके अधिकांश कवि भक्त कवि हैं, जो कला के प्रति विशेष सतर्क नहीं हैं। इनके काव्य में अलंकारों का सन्निवेश प्रयत्न-साध्य न होकर सहज रूप में हुआ है। नरसिंह ज ने गीति-प्रकार के पदों में

१- भ्रमरगीत सार : भूमिका सम्पादक-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

'गोपी सन्देश' का आकलन किया है जिसमें उपमा एवं अनुप्रास जैसे अलंकार प्रयुक्त हुए हैं -

"चन्द्र विना जम रजनी हो वीणे ;
तेम रे तम विना अन्यो जगदीसे ।"[1]

चतुर्भुज ने उपमा द्वारा गोपियों के विरह की अभिव्यक्ति की है :-

"जल बिना क्यम जीवि माछली ?
जीव बिना जिम देह ।"[2]

चतुर्भुज के काव्य में चित्रात्मकता के दर्शन पद-पद पर होते हैं । कृष्ण के प्रेम के लिए प्राण छोड़ने को उद्यत गोपियों का कवि ने सजीव चित्र खींचा है जिसमें वर्णानुप्रास की छटा द्रष्टव्य है -

"नीर नीर झरण वहि रे नयने,
दीन वचन वदिई रे वयणे ।"[3]

इस प्रकार कवि ने रसोद्रेक के लिए वर्णानुप्रास, यमक, उपमा आदि अलंकारों का प्रयोग किया है ।

ब्रेहेदेव की 'भ्रमरगीता' में भावों का पिष्टपेषण है । कवि ने बीच-बीच में ब्रजभाषा मिश्रित हिन्दी के पद का भी प्रयोग किया है :-

"प्रीत बनाई ऐसी नीकी,
नहि रे वीरा दिवस चार की
प्रीत कर्ण वैं भक्की ।"[4]

१- गोपी सन्देश : नरसिंह पद २
२- भ्रमरगीता : चतुर्भुज कड़िका १४
३- भ्रमरगीता : चतुर्भुज कड़िका ६७
४- भ्रमरगीता : ब्रेहेदेव पद ७

ऐसे पदों में गोपियों के हृदयस्थ भावों की अच्छी अभिव्यक्ति हुई है। इस दीर्घ काव्य में एक सूत्रता का अभाव है। बीच-बीच में अलंकारों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। उपमालंकार का सौन्दर्य द्रष्टव्य है -

"वेली-विछोहां जिम पांदडा रे,
जनुनी-विछोहां रे ज्यम बाल।
कृष्ण जी-विछोहां आहां सहू गोपिका रे,
जुरू कुण करे रे अमारी संभाल।।"[1]

आद्यांत में कवि ने अपने काव्य को स्वयंभू उद्गार कहा है किन्तु रचना पढ़कर ऐसा प्रभाव हमारे मन पर अंकित नहीं होता :-

" अर्थ एक एकि हुं न जाणुं,
स्वत: बोलाव्युं ते मि कह्युं।"[2]

ब्रेहेदेव की तुलना में भीम रचित 'रसिकगीता' कलापक्ष की दृष्टि से उत्तम रचना है। काव्यारंभ में ही प्रभावोत्पादक उपमा द्वारा कवि ने अपनी विनम्रता और दीनता का परिचय दिया है -

"महा-सिंधु सागर आगे रे,
जल जेम वाटली,
मोटा कविजन आगल रे,
मारी बुद्धि एटली।"[3]

उद्धव का रथ देखते ही उस तरफ दौड़ती हुई गोपियों का एक अत्यन्त सजीव

१- भ्रमरगीता : ब्रेहेदेव पद १०

२- वही, : ब्रेहेदेव कडवुं ४०

३- रसिक गीता : भीम कंडिका -५

और गत्यात्मक चित्र कवि ने खींचा है -

"धसमसी सर्वे धाई रे ;
दीठो रथ रावलो ;
आषाढो मेह आव्यो रे ,
वाये जेम वावलो ।।"[१]

विश्वनाथ जानी में शब्द-माधुर्य की अच्छी परख है । 'तंन', 'मंन', 'मुंने' के प्रयोग द्वारा कवि ने अपनी रचना को कलात्मक, भावपूर्ण और आकर्षक रूप दिया है -

"कहे देवकी श्रीकृष्ण ने,
सांभल्य माहारा तंन ,
मोहनजी ! मथुरां विषे,
शें नथी पामतूं गंन ?"

+ -६ +

"मुंने कोहोनी मननी वात।"[२]

इस कवि की वाणी में आद्यंत मृदुता के दर्शन होते हैं । श्रीकृष्ण के विरह में निरन्तर आंसू बहाती गोपियों की तुलना बाढ़ग्रस्त नदी के साथ की गई है -

"नेत्रे नीर निरखतां चाल्युं,
नदीपुर ज्यमन रहे आज्युं ।"[३]

यह उपमा निश्चय ही नवीन और प्रभावोत्पादक है ।

१- रसिकगीता : भीम कंडिका पृ० ३०
२- प्रेम-पचीसी : विश्वनाथ जानी-पद १
३- वही, ,, पद -१३

कवि प्रेमानन्द के काव्य का कलापक्ष अत्यंत सबल है। कवि ने अपनी मौलिक उपमाओं के द्वारा काव्य समृद्धि में वृद्धि की है। उद्धव के आगमन के समय का गोकुल कवि ने निम्न शब्दों में सजीव रूप व में अंकित किया है :-

"मलपती हींसती गाय चाले,
वाछरू मां शब्द करे,
सांड वाड़े, चीस पाड़े,
ते गोंदरे दोड़ता करे।
गीतनुं गानुं, वेणनुं वानुं,
आवे गोवाल गोंचारी,
उद्धव जुवे, सुरभी दुहे,
करे काम ब्रजनी नारी।
धेनु -खुरनी रेणु उठे,
गगन मध्ये घटा थई,
नन्दघेर उद्धव आव्या,
को ब्रजवासीये दीठा नहीं।।"[१]

यह चित्र नयनरम्य होने के साथ साथ श्रुति मधुर भी है। उपमा और रूपक प्रेमानन्द के प्रिय अलंकार हैं। उद्धव के आगमन के समय नन्द-यशोदा आनन्द व्यक्त करते हुए कहते हैं कि आपका आगमन जुगनूं के घर सूर्य और पापी के चित्त में परमात्मा के आविर्भाव के समान है -

" जेम आगिया ने घेर आवे आदित,
जेम गोबिन्द आवे पापी ने चित्त।।"[२]

१- मुमरगीता : प्रेमानन्द कडवुं १२५
२- वही, ,, ,, १२६

प्रात:कालीन गोकुल का वर्ण विन्यास की सहायता से कवि ने सजीव चित्र खींचा है -

" कर कंकण कटि-मेखला, झांझरी घुघरी नाद,
हरिगुण ज गाता भूषण बाजे, उपजे अमृत स्वाद,
चमके घुमरी, चमके चुनड़ी, घूमे वलोनुं घोर,
नेतरुं ताणी, गुण विखोणे, गाये नंद किशोर ।।"

+ + +

बलवंत बाली, पटवल वाली, चूड़ा चढाव्या बांहे,
घरमांहे करती, काम करती, मनुं माधव मांहे ,
" वेणी छूटे, हार छूटे, बांधे बाउडुं, छोड़े गाय,
जाये गोंदरे गौ भालवा, इच्छे दरशन हरिनुं थाय ।।"[१]

समस्त गोकुल और अविभाज्य अंग गोपियों का भी कवि ने सजीव चित्र प्रस्तुत किया है । कवि ने उनकी कृष्णमय अवस्था का अच्छा परिचय दिया है । 'कृष्णात परम् अहं किमपि तस्यम न जाने' का गोपियां साकार रूप हैं । श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों का जो अनन्य भाव है उसकी अत्यंत कलात्मक अभिव्यक्ति द्रष्टव्य है -

"हरि ! हरि! कहेतां हरिरूप थाशुं,
जेम जलमां सिंधव रे ।
भाई, गोपी गोविन्दनुं एक रूप छे,
जेम ताणा-मांहे वाणो रे ;
अमो लहर, शामलीओ सागर,
रखे जूजवां जाणो रे ।।"[२]

१- भ्रमरगीता : प्रेमानन्द कडवुं १२८

२- भ्रमर-पचीसी : प्रेमानन्द पद-२५

कवि प्रेमानन्द की रसिकता और हास्य व्यंग्य का एक उदाहरण द्रष्टव्य है। गोपियां राजकुमार श्रीकृष्ण को कुछ नहीं तो मृगया के लिए वृन्दावन बुलाती हैं -

"राजकुंवर नुं कर्मज एवुं के,
मृगया रमवा जाए ;
मृगनेनी अहीं छे घणी,
आव जो वृन्दावन मांय रे ।।"[1]

गुरुणोत्तम ने भ्रमरगीत का प्रारम्भ मधुकर प्रवेश के साथ किया है और काव्यारंभ में ही अपनी उच्च कल्पना शक्ति का परिचय दिया है। ब्रज की सूखी लताओं को सींचने के लिए श्याम का मेघ रूप में वर्णन प्रभावोत्पादक बन पड़ा है -

"सखि । मेघरूपे थया माहावजी,
छो हलधर वीर ;
ब्रजनारि ते सूकि वेलड़ी,
तेने सींचवा नीर ।।"[2]

सुन्दरकृत 'भ्रमरगीता' में अन्यत्र दुर्लभ ऐसा प्रकृति वर्णन प्राप्त होता है। सन्ध्या समय उद्धव के ब्रज प्रवेश का वर्णन अत्यंत मनोहारी है। सुगन्धयुक्त शीतल पवन और पंछियों के कलरव का वर्णन द्रष्टव्य है :-

"पुष्प नानां रह्यां फूली,
सुगंध शीतल वाए ।
भ्रमर गुंजारव करे,
तांहां नाना पंखि वाणी ;
कुंज वन मोहामणी,
मोर कला मंडित जाणी ।।"[3]

१- भ्रमर-चौसठी: प्रेमानन्द

२- भ्रमरगीत : गुरुणोत्तम -पद-१

३- भ्रमरगीता : सुन्दरकृत ऋतु -६

कवि सुन्दर की इस कृति का अन्य उत्तमांग वहीं विरोनी गोपियों का अति सुन्दर, गतिशील नाद चित्र है -

"खलके कंकणा नाद नेहवर,
झांझर नो झमकार ।
कटि मेखला किंकिनी बाजे,
घूघरा घमकार ।"

सुन्दर शब्द चयन और स्वर्ण विन्यास के कारण इस वर्णन में संगीतात्मकता का सन्निवेश हो गया है ।

रघुनाथ 'उद्धव-संवाद' संक्षिप्त होने पर भी कलात्मक कहा जा सकता है । कवि गोविन्दराम की भाषा अत्यंत सरल और सुबोध है ।

गुजराती भाषा के भ्रमरगीतकारों ने प्रबन्ध एवं मुक्तक दोनों शैलियों का प्रयोग किया है । प्रबन्ध काव्यों में आख्यानात्मक तथा गीतात्मक रचनाएं विशेष उल्लेखनीय हैं । मध्यकालीन गुजराती साहित्य का एक पूरा युग आख्यान साहित्य की परम्परा के लिए प्रसिद्ध रहा है । आख्यानकारों में कवि प्रेमानन्द शीर्षस्थानीय माने गये हैं । 'आख्यान' के समान 'गीता' भी एक विशिष्ट काव्य प्रकार है । गुजराती के अधिकांश ने भ्रमरगीतकारों ने पदशैली एवं कड़वाबद्ध गीताओं के माध्यम से भ्रमरगीत प्रसंग का गान किया है । 'फागु' एवं 'गरबा-गरबी' भी गुजराती काव्य की विशिष्ट विधाएं हैं । इन शैलियों का प्रयोग ही यत्र-तत्र देखा जा सकता है । अधिकांश कवियों ने संगीतात्मकता का अच्छा निर्वाह किया है । काव्य का विषय ही भावना-प्रधान है । अत: गीति काव्य की प्राय: सभी विशेषताओं के दर्शन होते हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि भ्रमरगीत काव्य भावना-प्रधान होते हुए भी कला कौशल युक्त काव्य है । इसमें रीति काव्य की सरसता, छंद की विविधता, व अलंकारों की रमणीयता एवं भाषा की अभिव्यंजनात्मकता दर्शनीय है । इसमें भक्तों की प्रेम लक्षणा भक्ति के साथ-साथ कलावंतों की कला का सुन्दर समन्वय हुआ है ।

00000000
000000
0000
00